आमुख

श्रीमती शान्ति सिंहल का "उर्मिमाला" के बाद यह दूसरा संग्रह है। मुझे यह लिखते हुए हर्ष है कि श्रीमती सिंहल का कवि अपनी रचनाओं में उत्तरोत्तर अधिक सुन्दर और अधिक अनुभूतिमय होता जा रहा है। वस्तुतः उनकी काव्यभूमि छायावाद पर आधारित है और आज का छायावाद यथार्थ जीवन से अधिक प्रभावित होने के कारण अक्लिष्ट और सुबोध हो गया है। इसलिए सौन्दर्यबोध की ग्राह्यता के साथ जिन कवियों ने उसे अपनाए रखा उनमें स्पष्ट ही अनुभूति की प्रधानता है।

मनुष्य के जीवन में शाश्वत और सामयिक दोनों प्रकार के सत्य का सम्मिश्रण है। अभाव और संघर्ष में जीने की कामना जहाँ मनुष्य को सामयिक सत्य से उत्तर पाने के लिए प्रेरित करती है, वहाँ उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम तर्कमय और अधिक शुष्क रहता है, वहां वह जीवन की उन हलचलों से समाधान पाने की चेष्टा भी करता है, जो अपने भीतर, बाहर तथा समाज के गति-विधान से उसे प्राप्त होता है। प्रगतिवाद का जन्म इसी से हुआ कि व्यक्ति के सुख-दुःख समाज के सुख-दुःख बनकर जीवन को समरस बना सकें। इसीलिए भाषा, शैली और वस्तु इन तीनों में क्रान्ति हुई, और आज जो हमारे सामने काव्य का सृजन हो रहा है उसमें यही दृष्टि काम करती है। हो सकता है, इस अवस्था में साहि में निरन्तर नये-नये प्रयोग होते रहें और यह भी हो सकता है कि हम मान्यतायें जीवन को अधिक नग्नरूप में देखने के लिए नए विश्वासों आधार मानकर अपनी अभिव्यक्ति दे सकें। ऐसा होना स्वाभाविक भी किन्तु जब मानव मनोभूमि में उठने वाले प्रेम, दया, क्षमा और पी अपने चिर प्रकृतरूप में उद्भूत होते हैं तब चाहे वह छायावाद की रच हो या रहस्यवाद की, या यथार्थवाद, अपने मूलरूप में वह एक ही प्रकार भावभूमि ग्रहण करती है। रीतिकालीन प्रेम और छायावादी प्रेम में विशे अन्तर नहीं है। सौन्दर्य-बोध दोनों का एकसा है, किन्तु शैली और ग्राह्यत भिन्न है। यही कारण है कि अनादिकाल से मनुष्य के इन भावों में तत्व त पहुँचने की एक ही दृष्टि रही है, केवल दर्शन का भेद रहा है।

स्नेह के लघु दीप में मैं
वर्तिका बनकर जली हूँ;
तव चरण की कोर छूने,
अर्घ्य जल बनकर ढुली हूँ;
मैं न यदि निज को मिटाती दूर क्या व्यवधान होता!
मैं न होती भावना फिर तू कहाँ भगवान् होता?

नहीं कह सकते कि ईश्वर का मनुष्य ने आविष्कार किया है या वह स्वयं आविष्कृत हुआ है। किन्तु इतना निश्चित है कि उसकी मूर्ति का निर्माण मनुष्य ने किया है, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा में मनुष्य का हाथ रहा है। इसी बात को यहाँ उस ढंग से रखा गया है कि पाठक न केवल रचना के सौन्दर्य से प्रभावित होता है बल्कि एक प्रकार की अद्भुत रस-सृष्टि भी होती है।

कवि का जीवन अपने बाहर और भीतर सौन्दर्य में आवृत सत्य की सृष्टि करना है या उसका उद्भास, यही सदा से उसका ध्येय भी रहा है। ध्येय के प्रति निष्ठा में उसकी तन्मयता जागरूक होती है। वह अन्तर्मुख हो जाता है, तभी उसकी कविता रूप ग्रहण करती है और जीवन के तेजोमय स्तर पुस्तक के पन्नों की तरह से खुलते चले जाते हैं, तभी शाश्वत सत्य की सृष्टि होती है। यह अनुभूति जितनी ही गहरी होती है जीवन-पट उतना ही अनावृत भी होता है, किन्तु इस जीवन-दर्शन की श्रेणियाँ हैं, उन्हीं श्रेणियों के अनुसार कवि में भी भावोन्मेष होता है। सामर्थ्य और प्रतिभा उसके सहायक बनते हैं।

'अलका' के कवि में उपर्युक्त भावनाओं का प्राधान्य है। 'सत्य और स्वप्न' नाम की एक कविता में उसने जीवन की इसी वास्तविकता का दर्शन किया है:

यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूँ!
पल में होती है जीत यहाँ,
पल में होती है हार यहाँ।

असफलता और सफलता का,
मिलता रहता उपहार यहाँ।
जीवन की मनुहारों को अब
विधि की छलना कैसे कह दूँ!
यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूँ!

एक और रचना:—

क्या बतलाऊँ इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है!
नीर भरे, ज्यों नभ आंगन में,
उमड़े पावस मेघ सजीले!
और तृषित ज्यों शत-शत युग के
चातक के नव बाल हठीले!
नहीं जानती इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है!
क्या बतलाऊँ इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है!

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि सृष्टि के सत्य को पाने के लिए कितना व्याकुल और लालायित है। इन रचनाओं में जहां शब्द-सौन्दर्य है, वहां भावों का भी प्रबल आवेग है। रचना की विशेषता यह है कि भावराशि शब्दों के साथ खेलती हुई चले। श्रीमती शान्ति की यह सब से बड़ी विशेषता है कि उनकी समस्त कविताओं में कोई भी रचना परिश्रम साध्य नहीं है।

इस संग्रह की अधिकतर रचनाएं सुन्दर और पूर्ण हैं, उनमें कृत्रिमता नहीं है। भावोद्वेल्लित स्थिति के क्षणों में निकले हुए हृदय के उद्गार हैं। मुझे विश्वास है, यदि श्रीमती शान्ति सिंहल अपने कवि के प्रति ईमानदार रहें, जैसा कि मैं समझता हूं बहुत कम लोग अपने को रख पाते हैं, तो वे निश्चय ही अपनी रचना से सन्तुष्ट हो सकेंगी। यहीं कवि को प्रतिभा का वरदान प्राप्त होता है। मैं कामना करता हूं उनका कवि उत्तरोत्तर अपने को पहचाने।

१४ नवम्बर, १९५२
दिल्ली

—उदयशंकर भट्ट

अनुक्रमणिका



१

मौन समर्पण

यदि मेरे नन्हे हाथों में अर्चन का सामान नहीं था,
कैसे कहदूं इन प्राणों में पूजन का अरमान नहीं था।

मन मन्दिर में बाला था वह,
मैंने प्रेम प्रदीप अनोखा।
जिसे बुझाने में निष्फल था,
निष्ठुर झंझा का भी झोंका।
तव छवि देखी और विमोहित अधर न यदि हिल पाए मेरे,
कैसे कहदूं इन प्राणों में प्रिय तेरा गुणगान नहीं था।

कब से पलकें बनी हुई थीं,
आशा का सुकुमार बिछौना।
कबसे आंखें अकुलाई थीं,
जैसे आकुल हो मृग छौना।
जिस लघुता की अवहेला की, तूने भी मुसका मुसका कर,
अपनी उस लघुता पर भी तो मुझको कब अभिमान नहीं था ?

मेरे नयनों के निर्झर ने,
तुझ पर अपना जीवन वारा।
मेरे अन्तर की आहों ने,
तुझको सौ सौ बार पुकारा।
कैसे तुझको रिझा न पाया इन प्राणों का मौन समर्पण,
पाषाणों में रहने वाले, प्रिय ! तू तो पाषाण नहीं था।

२

रात की गहराइयों में गान जागे

रात की गहराइयों में गान जागे
स्वप्न मीठे रात मीठी,
नींद की हर बात मीठी.
प्राण में मेरे मधुर आह्वान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

मूंद कर दृग, सो रहे खग,
सुप्त गहरी नींद में जग,
मौन इन अमराइयों में प्राण जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

जाग वीणा, जाग गायक,
जाग युग के मौन साधक,
रूप शत शत ले अमर अरमान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

जाग ओ अनुरक्ति के पल,
जाग ओ अभिव्यक्ति के पल,
जाग मेरी साधना, वरदान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

३

कौन ?

कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

चन्द्र किरणें ले गईं जो
नयन के मोती चुरा कर,
अब बिखरते जा रहे हैं
वे अधर पर हास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

जिन दृगों की नीड़ में
लेते रहे सपने बसेरा,
अब वहां पर हैं विहंसती
सजगता विश्वास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

क्यों न पिक पञ्चम स्वरों में
गाए मेरा गान मधुमय,
आज पतझड़ भी यहां पर
आगया मधुमास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

जिस हृदय में युग युगों से
याचना के गान पनपे,
अर्चना का गीत मुखरित
है वहां प्रतिश्वास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

कौन स्पन्दित हो उठा है
आज फिर सूने हृदय में,
कौन छाया भाव भू पर
विमल शरदाकाश बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर ?

४

मैं और तू

सैंकड़ों पाषाण में से एक तू पाषाण होता,
मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान् होता।

स्नेह के लघु दीप में मैं
वर्त्तिका बनकर जली हूँ,
तव चरण की कोर छूने
अर्घ्य जल बनकर ढुली हूँ।
मैं न यदि निज को मिटाती दूर क्या व्यवधान होता,
मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान् होता।

अन्तर में अंधियारा छाए,
दीप निरन्तर जलता जाता।
मानव अपनी निर्बलता पर
फिर क्यों प्रतिक्षण है अकुलाता।
निर्जल, इस बीहड़ मरु पथ पर,
आंसू पी-पी चलते जाना !
अपने मन का क्या बहलाना !

कौन यहां पर समझ सका है,
कैसे छलती मन को आशा।
कौन किसी को बता सका है,
जीवन की उलझी परिभाषा।
जब तक जीवन है तब तक तो,
हँसते-हँसते जीते जाना !
अपने मन का क्या बहलाना !

६

रात सपनों में ढली थी

रात सपनों में ढली थी,
रात सपनों में पली थी,
हो गया जब प्रात देखा:
रात सपनों ने छली थी!
हो गई जिससे उनींदी रात सारी,
स्वप्न वह भी रह गया आखिर अधूरा!

स्वप्न जो था स्वप्न ही है,
स्वप्न ही वह चिर रहेगा,
विवश मानव मूक स्वर में,
युग-युगों तक यह कहेगा :
हो गई जिससे उनींदी रात सारी,
स्वप्न वह भी रह गया आख़िर अधूरा !

रैन भी है चिर उनींदी,
हैं नयन भी चिर उनींदे !
ये विकल से कह रहे
अरमान युग-युग के उनींदे :
हो गई जिससे उनींदी रात सारी,
स्वप्न भी वह रह गया आख़िर अधूरा !

ओ उनींदी रात सोओ,
आज तुम मुझको जगाकर।
भर रहा कोई स्वरों में
गान नित-नूतन सजाकर !
हो गई जिससे उनींदी रात सारी
स्वप्न भी वह रह न पायेगा अधूरा !

———

७

जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए

जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूं ?

जब न तुमसे स्नेह के दो कण मिले,
व्यथा कहने के लिये दो क्षण मिले।
जब तुम्हीं ने की सतत अवहेलना,
विश्व का सम्मान लेकर क्या करूं ?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूं ?

एक आशा एक ही अरमान था,
बस तुम्हीं पर हृदय को अभिमान था।
पर न जब तुम ही हमें अपना सके,
व्यर्थ यह अभिमान लेकर क्या करूं ?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान ले कर क्या करूं ?

अलक्ष

दूँ तुम्हें कैसे जलन अपनी दिखा,
दूँ तुम्हें कैसे लगन अपनी दिखा?
जो स्वरित हो कर न कुछ भी कह सकें,
मैं भला वे गान लेकर क्या करूं?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूं?

शलभ का था प्रश्न दीपक से यही,
मीन ने यह बात जीवन से कही:
हों विलग तुम से न जो फिर भी मिटें,
मैं भला वे प्राण लेकर क्या करूं?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान ले क्या करूं?

अर्चना निष्प्राण की कब तक करूं?
कामना वरदान की कब तक करूं?
जो बना युग-युग पहेली-सा रहे,
मौन वह भगवान लेकर क्या करूं?
जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहचान ले कर क्या करूं?

८

मन का गीत सुनाऊं कैसे ?

जो मेरी जीवन-वीणा के
तारों में स्वर बन लहराया।
जिसने स्वयं हाथ फैलाकर
मेरी पूजा को अपनाया।
जग उसको पाहन कह दे,
पर मैं पाहन कह पाऊं कैसे ?
मन का गीत सुनाऊं कैसे ?

जिसका गृह् आलोकित करने
रवि शशि स्वयं दीप्त हो जाते ।
जिसके चरणों पर ढुलने को
शत-शत सागर उमड़े आते ।
उस आराधित के चरणों पर
आंसू अर्घ्य चढ़ाऊं कैसे ?
मन का गीत सुनाऊं कैसे ?

जिसके नेह्-भरे प्राणों ने
मुझको अपना मान लिया है,
जिसने स्वयं पराजित हो कर
मुझे विजय का दान दिया है,
उसके सन्मुख तुम्हीं बताओ
अपनी विजय मनाऊं कैसे ?
मन का गीत सुनाऊं कैसे ?

९

दीपक के प्रति

आज बतादे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे ?

तेरे तल में अँधियारा है,
फिर भी तू अंधियारा हरता।
सांस सांस पर धूम्र रूप में,
तू प्रतिपल निज व्यथा उगलता।
देख रही हूँ तेरी लौ में,
तेरा आकुल हृदय मचलता।
पर तम को हरने में ही तो,
है यह तेरा जीवन जलता।

जगती को जीवन दे कर भी,
मैं प्रकाश कर पाऊं कैसे ?
आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे ?

आता है परवाना उड़ कर,
लेकिन वह भी जल ही जाता ।
तेरे प्राणों की ज्वाला में,
पागल अपना तन झुलसाता ।
उस का यह बलिदान न तेरी,
गति में कुछ बाधा पहुँचाता ।
धन्य-धन्य है जीवन तेरा,
अविरत गति से जलता जाता ।

क्षण भंगुर यह जीवन-दीपक,
इसको सफल बनाऊं कैसे ?
आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे ?

१०

अमर अधिकार

जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

शलभ के अनुराग ने ही,
दीप को जलना सिखाया।
वर्त्तिका का त्याग ही तो,
तिमिर में आलोक लाया।
ज्योति उज्ज्वल जागरित है,
नेह का उपहार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

एक प्रिय सुधि को सँभाले,
एक आशा के सहारे।
फिर रही सरिता दसों-दिशि,
निज तृषित आंचल पसारे।
खो कहीं अस्तित्व देंगे,
प्राण पारावार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

अश्रु ही प्यारे उन्हें,
जिनको न विधि मुसकान देता।
शाप ही लेते सँजो,
जिनको न विधि वरदान देता।
मन नहीं फूला समाता,
स्नेह की मनुहार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

हो भले ही या न हो,
पूजन कभी स्वीकार मेरा।
छीन सकता कौन है पर,
अर्चना – अधिकार मेरा।
साध कुछ बाकी नहीं है,
यह अमर अधिकार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

११

नयन के अश्रु रुक जाते

नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती!
न रोके से मगर आकुल,
हृदय का गान रुकता है!

विकट उत्तुंग शिखरों से,
जलद की राह रुक जाती!
न जीवन दान देने का,
मगर अरमान रुकता है!

एक प्रिय सुधि को सँभाले,
एक आशा के सहारे।
फिर रही सरिता दसों-दिशि,
निज तृषित आंचल पसारे।
खो कहीं अस्तित्व देंगे,
प्राण पारावार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

अश्रु ही प्यारे उन्हें,
जिनको न विधि मुसकान देता।
शाप ही लेते सँजो,
जिनको न विधि वरदान देता।
मन नहीं फूला समाता,
स्नेह की मनुहार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

हो भले ही या न हो,
पूजन कभी स्वीकार मेरा।
छीन सकता कौन है पर,
अर्चना – अधिकार मेरा।
साध कुछ बाकी नहीं है,
यह अमर अधिकार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

११

नयन के अश्रु रुक जाते

नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती!
न रोके से मगर आकुल,
हृदय का गान रुकता है!

विकट उत्तुंग शिखरों से,
जलद की राह रुक जाती!
न जीवन दान देने का,
मगर अरमान रुकता है!

युगों से तृषित चातक,
प्यास अपनी रोकता आया !
जलद को देख पर उसका,
नहीं आह्वान रुकता है !

मिलन की चाह रुक जाती,
न अन्तर्दाह रुक पाती !
किसी के रोकने से कब,
शलभ-बलिदान रुकता है !

लहरियां सिन्धु की हिय—
ज्वाल को बरबस छिपा लेतीं !
न उनके रोकने से पर,
विकल तूफ़ान रुकता है !

नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती !
न रोके से मगर आकुल.
हृदय का गान रुकता है !



१२

हार-जीत

हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

वे अधूरे स्वप्न ही जो,
हो नहीं साकार पाए।
एक प्रिय वरदान ले फिर,
इन दृगों में आ समाए।
साधना ही अब हृदय की,
मीत होती जा रही है!
हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

खो दिया अस्तित्व मैंने,
अब किसी का पा सहारा।
हार कर भी कह रहा मन,
मैं न हारा, मैं न हारा।
आज जीवन से मुझे कुछ,
प्रीत होती जा रही है!
हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

बन्धनों में बँध गया है,
स्वयं ही उन्मुक्त जीवन।
मुक्ति से प्यारा मुझे है,
कल्पना का मधुर बन्धन।
वेदना उर की अमर,
संगीत होती जा रही है!
हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

१३

व्यवधान

दूर कभी तो होगा कह दो,
युग-युग का व्यवधान हमारा।

दूर क्षितिज के आंगन में छिप,
मुसकाते—से तुम रहते हो।
मधुर-मिलन की आशा लेकर,
बहता जीवन-यान हमारा।
दूर कभी तो होगा कह दो,
युग-युग का व्यवधान हमारा।

ज्ञात नहीं है स्नेह-मार्ग का,
ओर कहां था, छोर कहां है।
कहता है हर एक यही बस,
ओ राही है दूर किनारा।
दूर कभी तो होगा कह दो,
युग-युग का व्यवधान हमारा।

किस आशा का नेह बनाकर,
जलती जाए जीवन-बाती।
खेल समझते हो प्रिय तुम तो,
मिटने का अरमान हमारा।
दूर कभी तो होगा कह दो,
युग-युग का व्यवधान हमारा।

मेरे अन्तर की यह पीड़ा,
अपनी सीमा पार उतर ले।
देखूं कैसे बना रहेगा,
फिर भी उर पाषाण तुम्हारा।
दूर कभी तो होगा कह दो,
युग-युग का व्यवधान हमारा।

१४

हैं नयन में अश्रु भी

हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

प्रार्थना वेला पुजारिन,
क्यों प्रकम्पित गात तेरा।
है यहां अवहेलना भी,
पर यहां वरदान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

डगमगाते क्यों चरण,
मंज़िल तुझे करती इशारा।
देख इस अनजान पथ की,
एक चिर पहचान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

अबल है या सबल मानव,
हृदय युग-युग की समस्या।
है यहां यदि प्राप्ति आशा,
तो यहीं प्रतिदान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

आंसुओं की लहरियों पर,
हास का सरसिज खिला है।
है हृदय में करुण क्रन्दन,
पर स्वरों में गान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

१५

अरी चांदनी तूने मन में

अरी चांदनी तूने मन में, क्यों तूफ़ान उठा डाले।

देख तुझे फिर याद मुझे,
सखि आज मधुर रातें आईं।
जिन की सुधियों से ही नयनों में,
अगणित बरसातें छाईं।
मैं सोच रही हूँ पागल सी,
किसने वे स्वप्न मिटा डाले।
अरी चांदनी तूने मन में, क्यों तूफ़ान उठा डाले।

उज्ज्वल सुन्दर रूप लिये तू,
नभ में जब बिछ जाती थी।
नीरव रजनी में भावों के,
मैं कितने महल बनाती थी।
मन ही मन भूला करती थी,
आशा के झूले डाले।
अरी चांदनी तूने मन में, क्यों तूफ़ान उठा डाले।

रूठ गया जाने क्यों मुझ से,
शैशव का प्यारा जीवन।
कौन जानता धोखा दे कर,
कहीं ले गया परिवर्त्तन।
राह देखती अब भी उसकी,
पलक-पांवड़ों को डाले।
अरी चांदनी तूने मन में, क्यों तूफ़ान उठा डाले।

तू जो कुछ खोती है सजनी,
वह सब फिर से पा जाती।
पर मैं जो बरबस खो बैठी,
उस का लघुकण भी न पाती।
हममें तुम में क्यों अन्तर है,
क्या बता सकोगी तुम बाले !
अरी चांदनी तूने मन में, क्यों तूफ़ान उठा डाले।

१६

प्यार का विश्वास तो दो

दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

अर्चना का गीत बनकर,
जल रहे हैं प्राण मेरे।
कर रहे हैं आरती सी,
ये सिसकते गान मेरे।
तुम सदय हो ठीक, पर—
इसका मुझे आभास तो दो।
दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

अलका

जल चुका है दीप कैसे,
अब जले बाती बता दो।
हृदय यह कब तक सँभाले,
पीर की थाती बता दो।
वेदना ही दे रहे हो,
पर कभी उल्लास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

मैं नहीं हूँ अमर फिर भी,
अमर मेरी भावना है।
स्वर्ण-सी जो तप रही है,
वह मनोरम कामना है।
विरह श्वासों में छिपाकर,
मिलन का इक श्वास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

मैं भिखारिन ही सही,
फिर भी नहीं झोली पसारी।
तुम महादानी अमर,
तुमने कभी ली सुधि हमारी।
शून्य सा यह हृदय-वन,
इसमें कभी मधुमास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

१७

मेरा गीत तुझे कब भाया

मेरा गीत तुझे कब भाया,

मन में सिंधु प्रणय का उमड़ा,
नयनों के प्याले भर आए!
मैंने उस खारे पानी से,
तेरे पद-पंकज निखराए।
मेरे सहज निवेदन को पर,
तूने नादानी बतलाया।
मेरा गीत तुझे कब भाया।

जब आंसू का रूप छिपाने,
मुस्कानों का घूँघट डाला।
जैसे अमर तिमिर में दीपक,
क्षण भर कर देता उजियाला।
मेरे इस अवलम्बन पर भी,
तू मन ही मन में मुस्काया।
मेरा गीत तुझे कब भाया।

जीवन के स्वर्णिम-प्रभात में,
अमर प्यार तेरा जागा था।
मेरे लघु सपनों ने तुझ से,
दान अमरता का मांगा था।
क्रूर जागरण-वेला में पर,
सपना क्या सपना रह पाया।
मेरा गीत तुझे कब भाया।

तुझ से ही स्वर लेकर मैंने,
अपनी करुण रागिनी गाई।
बन अजान पर पूछा तूने,
इतनी व्यथा कहां से आई।
मेरा आकुल स्वर बतला दे,
तेरा अन्तर कब छू पाया।
मेरा गीत तुझे कब भाया।

१८

जब से तू इन गीतों में साकार हुआ है

जब से तू इन गीतों में साकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है।

मेरा जीवन निशा, और तू स्वप्न सुनहला!
निशि का सपने से ही तो शृंगार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

दीप सराहे विश्व, सराहूं नेह सदा मैं—
जो दीपक के जलने का आधार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

गाती हूं मैं गीत, रागिनी है प्रिय तू ही।
स्वर बिन साथी कौन यहां स्वरकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

उस अज्ञात शक्ति को क्या कह प्राण पुकारे।
जिस से तप्त हृदय में मधु-संचार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है।

चित्रकार तू, छवि तेरी, मैं एक तूलिका।
जिस से चित्रित यह तेरा संसार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से, कुछ प्यार हुआ है।

जब से तू इन गीतों में साकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है।

१६

काश किसी से इस जीवन में

काश ! किसी से इस जीवन में,
मैंने भी कुछ पाया होता !
जान कभी पाती यदि तुम से,
आंसू का उपहार मिलेगा !
मैंने भी अपने जीवन का,
कुछ तो मोल लगाया होता !
काश ! किसी से इस जीवन में,
मैंने भी कुछ पाया होता !

मैंने तो अपने जीवन में,
देखे हैं बस सपने तेरे!
सपनों को साकार बनाने,
पल भर को तू आया होता!
काश! किसी से इस जीवन में,
मैंने भी कुछ पाया होता।

जान कभी पाती नन्हीं सी,
लौ अन्तर-पट को छू लेगी!
तो क्यों अपने मन-मन्दिर में,
प्रेम प्रदीप जलाया होता!
काश! किसी से इस जीवन में,
मैंने भी कुछ पाया होता।

तेरी निष्ठुरता को भी तो,
इसी लिये अपनाया मैंने!
दर्द न दिल में आ बसता तो,
गीत कहां से गाया होता!
काश! किसी से इस जीवन में,
मैंने भी कुछ पाया होता।

२०

हृदय सदा नादान रहा है

हृदय सदा नादान रहा है !
देख दीप को जलना सीखा,
फूलों से मुसकाना सीखा !
दोरंगी-सी इस दुनिया में,
निज अस्तित्व मिटाना सीखा !
पर जाने क्यों मेरे मन का,
दर्द बना मेहमान रहा है !
हृदय सदा नादान रहा है।

आशंका

गिन-गिन कर जलाते दीपक जो,
अँधियारे को दूर हटाया।
देख ज्योति की आभा अनुपम,
प्रश्न एक मन में उठ आया।
जो पल-पल मिटते थे .
क्या दीपक का जीवन यह
हृदय भरा आवास बन,

पर दीपक की ज्योति
स्वयं जली अविराम
जग भर की मुस्कान,
मन में यह आशा
भावनाओं की .
रोता
हृदय है

२१

लोहे की दीवारें

लोहे की दीवारें, पंछी !
कैसे तुझे सुहाती होंगी ?

अन्तर में संघर्ष छिपाए,
तेरा जीवन जलता होगा !
हासों में छिप क्रन्दन तेरा,
भोले जग को छलता होगा !
पर अनजाने में तो तेरी,
अखियां भी भर आती होंगी !
लोहे की दीवारें, पंछी !
कैसे तुझे सुहाती होंगी ?

तिल-तिल कर जलते दीपक ने,
अँधियारे को दूर हटाया !
देख त्याग की आभा अनुपम,
प्रश्न एक मन में उठ आया !
यों पल-पल मिटने को ही,
क्या दीपक का निर्माण रहा है !
हृदय सदा नादान रहा है !

पर दीपक तो ज्योति दे गया,
व्यर्थ कहां बलिदान रहा रे !
जल कर भी कुछ कर न सकी मैं,
मन में यह अरमान रहा रे !
अभिशापों की इस दुनिया में,
रोता ही वरदान रहा है !
हृदय सदा नादान रहा है !

२१

लोहे की दीवारें

लोहे की दीवारें, पंछी !
कैसे तुझे सुहाती होंगी ?

अन्तर में संघर्ष छिपाए,
तेरा जीवन जलता होगा !
हासों में छिप क्रन्दन तेरा,
भोले जग को छलता होगा !
पर अनजाने में तो तेरी,
अखियां भी भर आती होंगी !
लोहे की दीवारें, पंछी !
कैसे तुझे सुहाती होंगी ?

जग की ख़ुशियों पर न्योछावर,
होंगी कब तक तेरी चाहें!
पलकों के डोरों से कब तक,
नापेगा जीवन की राहें?
सोच रही हूं, बुझती कितनी—
यों ही जीवन-बाती होंगी।
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

जागृति का सन्देश लिये जब,
लेती होंगी वायु हिलोरें!
ऊषा की आभा से रक्तिम,
होती होंगी नभ की कोरें!
जग के आंगन में जब चिड़ियां,
गाती मधुर प्रभाती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

२२

विहंसता यौवन धरा का

विहंसता यौवन धरा का, खिल रहे तरु पात रे!

हरित आभामय प्रकृति की,
नवोदित कोमल कली-सी!
स्पर्श पाकर पवन का,
नत शीश कुछ सकुचा रही सी!
ले उठी अंगड़ाइयां, सरसों नवल कृश गात रे!
विहंसता यौवन धरा का, खिल रहे तरु पात रे।

झूमती यह वल्लरी,
सुकुमार हो मदमत्त पल-पल !
कर रही अठखेलियां,
पाकर विटप का स्नेह सम्बल !
प्राण में उल्लास, अधरों पर मिलन की बात रे !
विहंसता यौवन धरा का, खिल रहे तरु पात रे !

चांदनी निखरी हुई,
बिखरी सजल आकाश में !
भीजता आंचल प्रकृति का,
रस भरे मधुमास में !
ले छुपा अपने हृदय में, नयन की बरसात रे !
विहंसता यौवन धरा का, खिल रहे तरु पात रे !

२३

तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना

तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना!

साध कब है अश्रु आंखों के सुखाओ!
साध कब मुस्कान अधरों पर सजाओ!
गान पर मेरे स्वरों में खेलने दो!
तुम न मुझ से छीन यह वरदान लेना!
तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना!

मैं न अपने पंथ को पहचानती हूँ,
किन्तु अपने लक्ष्य को तो जानती हूँ!
एक ही अनुरोध है इस पंथिनी का,
मिल कहीं जाओ अगर, पहचान लेना!
तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना!

पंथ के कांटे न मुझ को रोक पाते,
मिलन के अरमान पग आगे बढ़ाते।
पूर्व इस के ये नयन चिर नींद सोएं,
दूर कर यह चिर-अलख व्यवधान देना!
तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना!

फूल होती बन चरण की धूल जाती,
दीप होती जलन अन्तर की दिखाती!
आज तो साकार ये अनुभूतियां हैं,
प्यार की इनको कसौटी मान लेना!
तुम न मुझसे छीन अपना दान लेना!

२४

तुम मुझे अनजान क्यों हो

मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो ?

जानती हूँ दीप मैं हूँ,
और तुम आलोक नूतन !
जानती हूँ देह मैं हूँ,
और तुम हो दिव्य चेतन !
फिर तुम्हारे और मेरे,
बीच में व्यवधान क्यों हो ?
मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो ?

ले तुम्हीं से ज्योति जग में,
बांट रवि दानी कहाया !
वन सके जग प्राण, तुमसे–
वायु ने वरदान पाया !
रजकणों में चेतना भर,
तुम बने पाषाण क्यों हो ?
मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो ?

शाप जो तुमने दिए,
मैंने उन्हें वरदान माना !
दीनता को भी कभी,
मैंने नहीं अपमान माना !
फिर तुम्हें निज श्रेष्ठता पर,
व्यर्थ यह अभिमान क्यों हो ?
मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो ?

—

२५

मैं दुख सुख से परिचित मानव

सुख से भी है परिचय मेरा,
दुख से भी अनजान नहीं हूँ!

हँसी अधर से खेली है यदि,
नयनों ने भी अश्रु पिए हैं!
तुम क्या जानो, कैसे मेरे
अन्तर के अरमान जिए हैं!
पर जो बन कर मिट जाता है,
मैं ऐसा अरमान नहीं हूँ!
सुख से भी है परिचय मेरा,
दुख से भी अनजान नहीं हूँ!

जग के पदचिन्हों से हट कर,
मेरी जीवन राह और है!
जग की सब चाहों से बढ़कर,
मेरे मन की चाह और है!
मेरा रोम रोम है मुखरित,
प्राणहीन पाषाण नहीं हूँ!
सुख से भी है परिचय मेरा,
दुख से भी अनजान नहीं हूँ!

मेरे ही विश्वास, जिन्होंने
बाँध रखा मुझको बन्धन में!
मेरे ही निःश्वास, जिन्होंने
साथ दिया मेरा जीवन में!
मैं दुख सुख से निर्मित मानव,
मन्दिर का भगवान् नहीं हूँ!
सुख से भी है परिचय मेरा,
दुख से भी अनजान नहीं हूँ!

२६

पत्थर क्या विश्वास करेगा

पत्थर क्या विश्वास करेगा !

चाहे कितने पुष्प चढ़ाओ,
चाहे जितने दीप जलाओ !
जल जल कर हर दीपक प्रतिपल,
अपना ही वो नाश करेगा !
पत्थर क्या विश्वास करेगा !

क्या जाने यह मन की चाहें,
क्या जाने अन्तर की दाहें !
प्राणों की मनुहारों का,
यह निर्मम क्या आभास करेगा !
पत्थर क्या विश्वास करेगा !

क्यों इस पर निज ममता वारूं,
क्यों इस पर निज क्षमता वारूं !
मेरी इस दुर्बलता का यह,
युग-युग तक उपहास करेगा !
पत्थर क्या विश्वास करेगा !

२७

सत्य और स्वप्न

यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूँ।

पल में होती है जीत यहाँ,
पल में होती है हार यहाँ!
असफलता और सफलता का
मिलता रहता उपहार यहाँ!
जीवन की मनुहारों को अब,
विधि की छलना कैसे कह दूँ!
यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूं!

बन्धन जीवन का भार कभी,
बन्धन से होता प्यार कभी !
बनता भी और बिगड़ता भी
आशा का लघु संसार कभी !
अपनापन आज न अपना है,
किस को कैसे अपना कह दूँ !
यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूँ !

सपना केवल सुन्दर होता,
सिर धुन कर सत्य वहाँ रोता !
कुछ पा जाने की आशा में,
जाने यह मन क्या क्या खोता !
इस चिर व्यापक दुर्बलता को
मन की तृष्णा कैसे कह दूँ !
यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूँ !

२८

सपना सपना ही रहने दो

सपना सपना ही रहने दो।

सपना ही लेकर मैं, अपना-
यह लघु संसार बसा लूंगी!
मन बहलाने को मैं, अपना-
तुम से स्वर ले कुछ गा लूंगी!
चिर मौन रहे तुमको प्यारा,
मुझको तो अपनी कहने दो!
सपना सपना ही रहने दो।

यह छलना ही सम्बल मेरा,
यह सपना भी विश्वास-भरा !
तुम को पाकर हो जाएगा
जड़ जीवन भी उल्लास भरा !
विश्वास-लहर पर छहर-छहर,
यह जीवन तरणी बहने दो !
सपना सपना ही रहने दो !

मैं तुमको अपना बना सकूँ,
इतना मुझको अधिकार कहाँ !
फिर भी रोके से रुकता है,
आकुल अन्तर का प्यार कहाँ !
मैं तुमको प्यार करूँ जीभर,
इतना सा सुख तो रहने दो !
सपना सपना ही रहने दो !

२६

ज्यों-ज्यों तुम्हें वनाया अपना

ज्यों-ज्यों तुम्हें वनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान वन गए!

मानव को अधिकार नहीं है,
मानव से पूजित अर्चित हो!
भाव-भक्ति के भूखे तुम क्या,
इसीलिए भगवान वन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें वनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान वन गए!

मानव की सामर्थ्य नहीं है,
मानव की अवहेला कर दे!
ओ अभिमानी इसीलिये क्या,
तुम निर्मम पाषाण बन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

युग-युग तुम्हें सजीव बना कर,
अक्षत, रोली, फूल चढ़ाए!
किन्तु दान देने की वेला,
तुम तो फिर निष्प्राण बन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

चाहा कब था पलकों से,
बाहर नयनों का आए पानी!
पर उर के उद्गार अधर पर,
आते - आते गान बन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

३०

जीवन से कैसे प्यार करूँ ?

जीवन से कैसे प्यार करूँ ?

इस अनजानी सी नगरी में,
मैं सब कुछ लेकर आई थी !
पलकों पर आशा का नर्त्तन,
अधरों पर सुस्मिति छाई थी !
आँसू से सब कुछ बदल लिया,
अब काहे का व्यापार करूँ ?
जीवन से कैसे प्यार करूँ ?

सावन की बदली नयन बने,
लगते ही ठेस बरस जाते !
अरमान किसी कोने में छिप,
पूरा होने को अकुलाते !
भीगी हैं पलकें, अधरों को-
क्यों हँसने पर लाचार करूँ ?
जीवन से कैसे प्यार करूं ?

कैसे कहदूँ दिल शीशा था,
कुछ चोट लगी और चूर हुआ !
दो क्षण भी जी-भर हँसी नहीं,
मन रोने पर मजबूर हुआ !
मन के अस्फुट उद्गारों का,
छन्दों से क्या शृंगार करूँ ?
जीवन से कैसे प्यार करूँ ?

नीरव वेला में रजनी की,
उर-वीणा के वज तार उठे !
कुछ ठगे हुए, कुछ लुटे हुए,
कुछ सोए से उद्गार उठे !
मन में जब यही समाया हो,
पीड़ा से ही अभिसार करूँ ?
जीवन से कैसे प्यार करूँ ?

३१

यह किस की पहचान......।

यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

जिसकी सुधि में तारों ने,
आँखों में रात बितादी!
उसकी ही छवि नयनों में,
छविमान हुई जाती है!
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

नहीं जानती कैसे होगा,
चित्र अधूरा पूरा !
धूमिल-सी रेखा भी,
अन्तर्ध्यान हुई जाती है !
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है !

श्वास-पृष्ठ पर कैसे लिख दूँ,
अन्तर-तम का लेखा !
चिर-पीड़ा भी अधरों की,
मुसकान हुई जाती है !
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है !

स्वप्न मिलन की बात,
प्राण इतना तुम-मय हो बैठे !
दो पल की देरी, युग का—
व्यवधान हुई जाती है !
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है !

३२

स्वप्निल संसार

तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे !

पलकों पर अगणित बोझिल,
सपनों का भार उठाए !
बढ़ता है राही तम में,
आशा का दीप जगाए !
उस के पथ का यह अन्तिम,
शृंगार न छीन सकोगे !
तुम मुझ से मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे !

अस्तित्व दीप का क्या है,
ज्वाला की स्वर्णिम रेखा !
इस घोर व्यथा में भी पर,
उस को मुसकाते देखा !
यह जल-जल कर जीने का,
अधिकार न छीन सकोगे !
तुम मुझ से मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे !

एकत्रित कर गाती हूँ,
बिखरे वीणा तारों को!
प्रतिबिम्बित करती जाती,
जीवन की मनुहारों को!
तुम मेरी वीणा की यह,
झंकार न छीन सकोगे!
तुम मुझ से मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

हँस-हँस कर सह लेती हूँ,
सुख-दुख की मैं मनमानी!
जीवन-आधार बनी है,
अनुभूति एक अनजानी!
तुम मेरे जीवन का यह,
आधार न छीन सकोगे!
तुम मुझ से मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे।

३३

मुक्ति मरण, बन्धन है जीवन

मुक्ति मरण, बन्धन है जीवन।

श्रमित विहग देखे हैं प्रतिदिन,
भू से नभ तक दौड़ लगाते!
बँध, दो तिनकों के बन्धन में,
वे पुनरपि नीड़ों में आते!
बार-बार कह उठता है मन!
मुक्ति मरण, बन्धन है जीवन।

सरिता तब तक ही सरिता है,
जब तक तट का मिले सहारा!
बन्धन टूटे, कौन कहे फिर-
सरिता, कहते जल की धारा,
बन्धन सौम्य रूप आकर्षण!
मुक्ति मरण, बन्धन है जीवन!

बन्धन सरल स्नेह-बन्धन पर,
अगणित बार मुक्ति मैं वारूँ।
हार अगर यह है जीवन की,
जन्म-जन्म यों ही मैं हारूँ।
बन्धन जीवन का अवलम्बन!
मुक्ति मरण, बन्धन है जीवन!

३४

मौन निशा में आज अचानक

मौन निशा में आज अचानक मेरा जी भर आया कैसे ?

जाने किन मीठे सपनों ने,
अन्तर - पट पर ली अंगड़ाई !
कौन अपरिचित सी सुधि मेरे,
प्राणों में पावस भर लाई !
अपने नयनों की रिमझिम से,
जब मैंने सावन शरमाया !
जग ने भी भीगी पलकों से,
भोला सा यह प्रश्न उठाया !
नयन गगरिया छोटी छोटी, इतना नीर समाया कैसे ?
मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे ?

जब प्राणों की सोई पीड़ा,
रह - रह कर मुसकाती जाती !
जब मन - गिरि से टकराने को,
पीड़ा की बदली घिर आती !
टूटी सी यह वीणा जाने,
कैसे जीवन राग सुनाती !
भावों के उमड़े सागर की,
शब्दों में सीमा बँध जाती !
यह क्या जानूं मन - सरसिज में, सागर आ लहराया कैसे ?
मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे ?

सपनों में भी तो पल भर को,
पीड़ा कब सहला मैं पाई !
नीर भरे दो झरनों ने भी,
प्यास नहीं अपनी बुझ पाई ।
यह मन अपनी करुणानिधि भी,
क्यों बेमोल लुटाता आया !
दग्ध हृदय के उद्गारों को,
कविता कह कर जग हर्षाया !
जाने मेरे पागलपन ने, जग का मन बहलाया कैसे ?
मौन निशा में आज अचानक मेरा जी भर आया कैसे ?

३५

मेरा स्वर सीमित रहने दो

मेरा स्वर सीमित रहने दो।

कसो न इतने तार, टूट कर
ही रह जाए जीवन–वीणा!
इसके जर्जर तारों का स्वर,
अस्फुट है अस्फुट रहने दो!
मेरा स्वर सीमित रहने दो।

नहीं साध मेरी स्वर–लहरी,
धरती अम्बर को छू पाए!
केवल इसे तुम्हीं सुन पाओ,
इसको अपने तक रहने दो!
मेरा स्वर सीमित रहने दो।

मेरी इस निरीहता की निज,
क्षमता से तुलना मत करना !
मेरे अन्तर की साधों को,
निज पर अवलंबित रहने दो !
मेरा स्वर सीमित रहने दो !

मैंने अपनी श्रद्धा से प्रिय,
तुमको पूजित देव बनाया !
तुम केवल इतना ही कर दो,
मुझको भी कुछ तो रहने दो,
मेरा स्वर सीमित रहने दो !

३६

नीर अधिक या प्यास अधिक है।

क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

नीर भरे, ज्यों नभ आंगन में,
उमड़े पावस मेघ सजीले !
और तृषित ज्यों शत-शत युग के,
चातक के नव बाल हठीले।
नहीं जानती इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।
क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

पल में अंकित हो जाती हैं,
ओंठों पर स्वर्णिम मुसकानें।
और दूसरे क्षण नयनों में,
सावन की रिमझिम अनजाने।
क्या बतलाऊं इस जीवन में रुदन अधिक या हास अधिक है।
क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

धूप छांह सी आशा - निराशा
पल में आती पल में जाती।
विगत कहानी बन रह जाता,
भावी सपना बन छा जाती।
क्या बतलाऊं अधिक निराशा या उर में विश्वास अधिक है।
क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।



३७

बार-बार कुछ कह जाती हूँ

बार - बार कुछ कह जाती हूँ, तुमसे मैं अनजाने में ही !

सजी आरती, सहमी प्रतिमा,
सहमी स्वयं पुजारिन भोली !
बीत चुकी अर्चन की वेला,
कैसे आज चढ़ाऊँ रोली !
नयन खुले ना, अधर हिले ना, भोर हुआ अनजाने में ही !
बार - बार कुछ कह जाती हूँ, तुमसे मैं अनजाने में ही !

अर्चन का जलता प्रदीप यह,
साध एक पाले था मन में!
जब-जब जन्म मिले दीपक बन,
ज्योति भरूँ जग के कण-कण में!
अरमानों का भार उठाए, दीप बुझा अनजाने में ही!
बार-बार कुछ कह जाती हूँ, तुमसे मैं अनजाने में ही!

दीपशिखा फिर ज्योतित देखी,
देखा नहीं जलाने वाला!
झंकृत देखी वीणा सब ने,
देखा नहीं बजाने वाला!
तार कसे जीवन-वीणा के, किस प्रिय ने अनजाने में ही।
बार-बार कुछ कह जाती हूँ, तुमसे मैं अनजाने में ही!

३८

टूट जाता है कभी पाषाण भी

टूट जाता है कभी पाषाण भी।

भेद कब खुलने दिया जल बिन्दु ने,
घोर वड़वानल छिपाई सिन्धु ने।
सह रहा है किन्तु सह पाता न जब,
उठ कभी जाता प्रबल तूफ़ान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

शाप भी प्यारा मुझे वरदान भी,
मान लो भगवान् तो पाषाण भी।
किन्तु ऐसे क्षण न कम हैं जब कभी—
अश्रु बन जाती मधुर मुसकान भी!
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

सोचती है यह हठीली कामना,
अन्त तक क्या साथ देगी साधना?
आँधियों में बुझ न पाया दीप जो,
वह बुझा सकता सहज पवमान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

जानती हूँ मौन रह दीपक जला,
मौन रह कर फूल काँटों में खिला।
किन्तु मैं तो मौन भी कैसे रहूँ,
है विवशता यह कि हूँ इन्सान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

३९

मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ

जीत मेरी, तुम न मानो हार अपनी,
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ।

कर रही चित्रित तुम्हीं को आज मैं कम्पित करों से।
गीत जिसमें गूँज हो तव, प्यार है उसके स्वरों से।
तुम न अपनाओ अकिंचन गीत मेरा,
किन्तु मैं हर गीत में तव रूप सहज सँवारती हूँ।
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ!

शाप भी प्यारा मुझे वरदान भी,
मान लो भगवान् तो पाषाण भी।
किन्तु ऐसे क्षण न कम हैं जब कभी–
अश्रु बन जाती मधुर मुसकान भी!
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

सोचती है यह हठीली कामना,
अन्त तक क्या साथ देगी साधना ?
आँधियों में बुझ न पाया दीप जो,
वह बुझा सकता सहज पवमान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

जानती हूँ मौन रह दीपक जला,
मौन रह कर फूल काँटों में खिला।
किन्तु मैं तो मौन भी कैसे रहूँ,
है विवशता यह कि हूँ इन्सान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

३६

मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ

जीत मेरी, तुम न मानो हार अपनी,
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ।

कर रही चित्रित तुम्हीं को आज मैं कम्पित करों से।
गीत जिसमें गूँज हो तव, प्यार है उसके स्वरों से।
तुम न अपनाओ अकिञ्चन गीत मेरा,
किन्तु मैं हर गीत में तव रूप सहज सँवारती हूँ।
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ।

कब चकोरी चांद से मधु प्रीति का वरदान पाती !
पर कभी क्या स्वप्न में भी लक्ष्य को अपने भुलाती !
तुम अपरिचित लक्ष्य ही बनकर रहो पर,
मैं तुम्हारी राह के ध्रुव चिह्न सतत निहारती हूँ !
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ !

चाहने से हो सकी कब कामना पूरी किसी की,
नापने से कम हुई क्या राह की दूरी किसी की !
प्रीति मेरी छू न पाए तव चरण पर,
मैं उसी लघु प्रीति पर शत जन्म अपने वारती हूँ !
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ !

कौन बाती को सँजोये ! कौन पूजा दीप बाले !
कौन चरणों में तुम्हारे नीर लेकर अर्घ्य ढाले !
कौन जाने पहुँच पाती या न तुम तक,
किन्तु मैं हर श्वास में गाती तुम्हारी आरती हूँ !
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय ! जीत अपनी वारती हूँ !

४०

मैंने गीत कहाँ गाया है ?

मैंने गीत कहां गाया है ?

अपने ही नीरस जीवन में,
मैंने नव उल्लास भरा है !
अपने सूने प्राण-विपिन में,
प्रिय ! मैंने मधुमास भरा है !
अपने ही वीणा के उलझे,
तारों को बस सुलझाया है !
मैंने गीत कहाँ गाया है ?

नहीं मुझे संकोच कि मेरी,
भाषा में कुछ जान नहीं है!
नहीं मुझे संकोच कि भावों-
पर सुन्दर परिधान नहीं है!
नहीं जगत के लिये लिखा है,
अपना ही मन बहलाया है!
मैंने गीत कहाँ गाया है!

तुमने ही मेरी खुशियों को,
आँसू पी जाना सिखलाया!
तुमने ही अन्तर के स्वर को,
ओठों पर आना सिखलाया!
तुमने जो कुछ सिखलाया था,
मैंने उस को दोहराया है!
मैंने गीत कहाँ गाया है।